संस्कृत भाषा के संवर्धन एवं समुन्नयन में "सुरभारती-सन्देशः" : वर्तमान प्रासंगिकता

Dr. Surya Prakash Singh

'Assistant Professor'

Department of Sanskrit, Faculty of Arts

Banaras Hindu University, Varanasi.

संस्कृत भाषा एवं तत्साहित्य भारतीय संस्कृति की संवाहिका है। भारतीय संस्कृति की बौद्ध, जैन एवं वैदिक तीनों धाराओं में संस्कृत भाषा के विपुल साहित्य की रचना हुई है। विश्व के विशाल भूभाग में संस्कृत भाषा, तत्साहित्य एवं भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रचार प्रसार रहा है, जिनका प्रभाव आज उन देशों की भाषा एवं संस्कृति में देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति ने विश्व संस्कृति को अपनी उदारतावादी दृष्टि से प्रभावित कर अपनी ओर आकर्षित कर रही है। इस संस्कृति को प्रभावित करने वाली मूल भाषा संस्कृत होने से इसे विश्व में गौरव प्राप्त है। संस्कृत भाषा प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के भण्डार की भाषा है। भारतीय संस्कृति के मूल को समझने के लिए हमें संस्कृत की शरण में जाना होगा। **" यत्र विश्वं भवती एकनीडम् " " सर्वे भवन्ति सुखिनः " "वसुधैव कुटुम्बकम् "" बहुजनहिताय बहुजसुखाय "** इत्यादि जैसी बहुशः उक्तियां आज समूचे विश्व को एक सूत्र में बाधने का काम कर रहें हैं। हमें ऐसा कहने में तनिक भी संकोच नहीं होगा कि संस्कृत भाषा एवं तत्साहित्य की उपेक्षा करने से हमारी संस्कृति की उपेक्षा होगी क्योंकि –

भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा।
विहाय संस्कृतं नास्ति संस्कृतिस्संस्कृताश्रिता ॥

अर्थात् भारत की दो प्रतिष्ठाएं है- संस्कृत और संस्कृति। संस्कृत के बिना संस्कृत पर आधारित संस्कृति टिक नहीं सकती। इसलिए हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता कि यदि संस्कृत नहीं तो कुछ भी नहीं,उसके अभाव में भारत का कोई अस्तित्व नहीं है –

विना वेदं विना गीतां विना रामायणीकथाम्।
विना कवि कालिदासं भारतं भारतं न हि ॥[१]

आधुनिक युग में यूरोप,अमेरिका आदि देशों में भारतीय संस्कृति के मौलिक ज्ञान के लिए वहाँ संस्कृत के उच्च शिक्षा संस्थान स्थापित किये जा रहे हैं। किन्तु विगत कुछ शताब्दियों में वैदेशिक शासन के कारण तथा शिक्षा के पश्चिमीकरण के कारण भारत में संस्कृत भाषा एवं हमारी संस्कृति के प्रति लोगों में उपेक्ष का भाव जागृत हुआ है और इसे आधुनिकता विरोधी एवं प्रगति विरोधी माना जाने लगा। फलतः भारतीय युवक- युवतियों में पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति विकसित हुई है जो अत्यन्त घातक स्वरूप धारण करती जा रही है।

वर्तमान समय में शिक्षित समुदाय प्राचीन संस्कृति और धार्मिक विचारों से सर्वथा विमुख होता जा रहा है। यह हमारे और हमारी संस्कृति दोनों के लिए चिन्तनीय एवं दुःखद विषय है।

विधाता का कितना विश्वस्त और न्यायसंगत विधान है कि जब भी किसी देश तथा समाज में मानवीय अथवा दैवीय या प्रकृति संभव व्यतिक्रम अथवा असन्तुलन अथवा वैषम्य अथवा सात्विक प्रवृत्तियों की अवनति का आरोहण दृष्टिगोचर होने लगता है तो एकाएक हमारे ध्वस्त समाज में ऐसे महान मनीषियों का अवतरण सर्वत्र देखा गया है।

संस्कृत भाषा के प्रतिदिन हो रहें ह्रास के ऐसे विषमकाल में देववाणी संस्कृत की रक्षा एवं उसके प्रचार-प्रसार के लिए पं० वासुदेव द्विवेदी शास्त्री ने "सुरभारती-सन्देश" नामक ग्रन्थ का प्रणयन सुषुप्त समाज को जागृत करने के लिए किया। "सुरभारती सन्देश" पण्डित वासुदेव द्विवेदी शास्त्री की यह ग्रन्थ रत्न उनकी प्रचार पुस्तक माला का चालीसवाँ पुष्प है। यह ग्रन्थ द्विवेदी जी की अमर प्रबन्ध काव्य है। जिसकी प्रधान नायिका सुरभारती हैं। जिसमें कवि ने अपने मन की बातों को मुख्य पात्र सुरभारती के द्वारा कहलवाया है। इस काव्य में सुरभारती स्वयं सब कुछ कहती है। वह अपना दुःख निवेदन करती है और उस सन्ताप से छुटकारा पाने के लिए सन्देश देती है। यहाँ कवि स्वयं को रचनाकार न मानकर सन्देशवाहक के रूप में

सुरभारती के सन्देशों को संस्कृतज्ञों, सुधीजनों एवं पाठकों तक पहुँचाता है। 'संस्कृतसमाजस्य, संस्कृतशिक्षायाः, संस्कृतविदुषां, संस्कृतच्छात्राणां च वर्तमानं स्वरूपं व्यवहारं च वीक्ष्य, सस्कृतभाषायाः निरन्तरं क्षीयमाणं दशाञ्च विलोक्य विषण्णहृदयेन भृशं पीड्यमानेन संस्कृतश्रेयसे संस्कृतज्ञजनप्रेयसे च सतंत प्रयतमानेन समर्पितसर्वस्वेन च पं० वासुदेवद्विवेदिशास्त्रिणा सुरभारतीसन्देशानां माध्यमेन वर्तमानदोषाणां निराकरणाय अपेक्षितगुणानामनुपालनाय केचन उपदेशाः सविनयं क्षमायाचनापूर्वकं निवेदिताः।'

"सुरभारती सन्देश" में सन्देशवाहक के आत्म निवेदन के अनन्तर प्रतिपाद्य विषय को पाँच प्रकरणों में विभक्त किया है और प्रत्येक प्रकरण में चार, पाँच अथवा इससे अधिक सन्देश निहित हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ पाँच प्रकरणों के साथ कुल 37 सन्देशों सहित दो हजार के लगभग श्लोकों को संग्रहीत किया है। यद्यपि प्रत्येक प्रकरण तथा उसमें निहित सन्देश के विषय भिन्न भिन्न है किन्तु सबका ध्येय एक ही है - संस्कृत भाषा एवं तत्साहित्य का व्यापक प्रचार-प्रसार। मुख्य प्रतिपाद्य विषय संस्कृत शिक्षा पद्धति, संस्कृत विद्वत्समाज, संस्कृत शिक्षार्थी वर्ग के कतिपय अवांछनीय अहितकर स्वरूप अत्यन्त दुःखद है और परिताप से परितप्त सुरभारती उन सबके प्रति अपना सन्ताप व्यक्त करती हुई उनके सर्वोत्कृष्ट स्वरूप निर्माण हेतु समयोचित कर्तव्य का निरूपण करती है।

संस्कृत व्यवहार विषयक प्रथम प्रकरण में सुरभारती आत्मनिवेदन करती हुई संस्कृत विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों आदि में पठन-पाठन एवं दैनिक व्यवहार में संस्कृत अध्येताओं के द्वारा संस्कृत व्यवहार न करने की ओर सन्देश दिया है। सुरभारती कहती है- **'अध्यापकाः न स्वयं संस्कृतं वदन्ति, न च स्वशिष्यात वक्तुं प्रेरयन्ति '। आओ, जाओ ' इत्यस्य स्थाने 'आगच्छ गच्छ ' कथने किं कष्टम् इति नावबुध्यते ।**

सुरभारती के मुख से –

स्थाने स्थाने पथि पथि गृहाभ्यन्तरे वा बहिर्वा

गोष्ठ्यां गोष्ठ्यां सदसि सदसि प्रान्तरे वाऽऽपणे वा ।

यत्र क्वापि प्रणयिनि जने सङ्गते संस्कृतज्ञे

वार्तालापो भवतु भवतां देववाणीविशिष्टः ॥[२]

सन्देशवाहक सुरभारती ने सामान्य व्यवहार में संस्कृत वक्ताओं, संस्कृत विद्वानों द्वारा क्लिष्ट संस्कृत शब्दों को प्रयोग न करने की सन्देश देती है। सुरभारती संस्कृतज्ञों से निवेदन करती है कि प्रायः जटिल, क्लिष्ट, सन्धि व दीर्घ समासयुक्त रचनाओं से बचें। सन्देशवाहक कवि की यह प्रबल धारणा है कि कोमलमति वाले सुकुमार बालकों को पाठशालाओं में प्रवेश कराते ही उन्हें लघुसिद्धान्त कौमुदी जैसे व्याकरण की दुरूह विषय पकड़ा दिया जाता है जो सर्वथा अनुचित है। पाठशालाओं में नवप्रवेशी छात्रों को सर्वप्रथम शब्दरूप एवं धातुरूप का ज्ञान कराना चाहिए –**' भाषाज्ञानं विनारम्भ प्रथमं लघुकौमुदीं, सुकुमारेषु छात्रेषु वज्रपातो विधीयते। '** हमारे भाषाविद् के मतानुसार बालकों को पहले भाषाशिक्षण देना चाहिए तदुपरान्त व्याकरणादि शास्त्रों की - **'प्रथमं भाषा शिक्षणीया, ततस्तस्या व्याकरणम्।'** इसलिए शिक्षकों को छात्रों के उत्साहविरोधी शिक्षा पद्धति को त्यागकर सरल मनोवैज्ञानिक विधि अपनाकर उन्हें शिक्षा देनी चाहिए। सन्देशवाहक कवि संस्कृत भाषा को अत्यन्त सुगम एवं सरस है ऐसा कहने के तीन मौलिक आधार सम्भवतः हो सकते हैं –१. मातृभाषा के द्वारा अज्ञातरूप से अधिगत संस्कृत शब्दों का विशाल भण्डार २. संस्कृत एवं भारतीय भाषाओं के वाक्य निर्माण आदि के विषय में एकरूपता तथा ३. संस्कृत व्याकरण की वैज्ञानिक और उसका व्यवस्थित रूप। कुछ संस्कृत के विद्वान अपने मिथ्या पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए सरल संस्कृत स्वरूप की उपेक्षा करते हुए कठिन संस्कृत का प्रयोग करते है और ऐसा प्रवाद अनायास फैलाते हैं कि यह बहुत अधिक कठिन भाषा है –

संस्कृतं कठिना भाषा संस्कृतं बहुदुर्गमा ।
अपि द्वादशभिर्वर्षैः वक्तुं नायाति संस्कृतम् ॥[३]

ऐसे लोग संस्कृत की दुरुहता के पक्षधर होते हैं। किन्तु सुरभारती ने अपने सन्देश कथन में संस्कृत भाषा को अतिसरल बतलाया है -

संस्कृतं सरला भाषा संस्कृतं सुगमाऽधिका।

संस्कृते शक्यते वक्तुं केवलं दशभिर्दिनैः ॥[४]

सुरभारती संस्कृत के मनिषियों से यह अपेक्षा करती है कि यथासम्भव सन्धि एवं समास की दुरुहता को त्यागकर छोटे-छोटे, लघु -लघु वाक्य वाले ललित बाल साहित्य सम्बन्धित रचनाएं करें, जिससे भावी

बच्चों में संस्कृत के प्रति रूचि जागृत हो। सन्धि, समास की जटिलता से रहित,सरस,सुगम्य, रचनाएं छोटे-छोटे बालकों में सहज ही अनायास हृदयङ्गम हो जाते है, जैसे-

मम बाल-पाठशाला **गायन्ति केऽपि गीतम्**

बहु शोभते विशाला । **ददते च केऽपि तालम् ।**

शिशवो लिखन्ति यस्यां **रचयन्ति केऽपि वाला:**

फलकेषु वर्णमाला ॥ **कुसुमेषु आलवालम् ॥**[५]

इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धति का प्रयोग करते हुए नव प्रवेश शिशुओं में संस्कृत भाषा के प्रति रुचि जागृत कर सकते हैं। यह वर्तमान समय में नितान्त आवश्यक है। सुरभारती स्वयं कहती है- ' **संस्कृत न केवलं सरला अपितु विश्वस्य सर्वासु भाषासु सरलतमास्ति' ।**

सुरभारती के मुख से –

यदि मनोन्नयने भवतां स्पृहा

कठिनतामपनीय तदा द्रुतम्।

प्रचलिता ललिता सरला शुभा

मधुमयी बुध ! वागुपयुज्यताम् ॥[६]

हमारे समाज में मनीषीवृन्द का निजभाषा के प्रति गौरव का नितान्त अभाव होना सुरभारती के दुःख का प्रमुख कारण है। ' **हिन्दीज्ञा : हिन्दीप्रचारे , उर्दूभाषिणः उर्दूप्रचारे , अन्यभाषाभाषिणोऽपि स्वभाषाप्रचारे निरतास्तत्पराश्च दृश्यन्ते।** इस प्रकार सुरभारती उन व्यक्तियों का जीवन सफल बतलाती है जो निरन्तर निजभाषा की सुरक्षा में तत्पर रहते हैं-

तस्यैव जन्म सफल विमला च कीर्तिः

वन्द्याः स एव च महामनुजो जगत्याम् ।

यो निस्पृहेण मनसा निजदेशभाषा

साहित्य-संस्कृति-सुरक्षातत्पराः स्यात् ॥[७]

आज हमारे संस्कृत समाज में स्त्रियों का संस्कृत शिक्षा से पलायन करना एक चिन्तनीय विषय है। संस्कृतज्ञों की कन्याओं तथा पत्नियों में संस्कृत शिक्षा का सर्वथा अभाव सुरभारती की दुःख का प्रमुख कारण है।'**संस्कृतविद्वासः स्वकन्याः स्वभार्याश्च संस्कृतं न शिक्षयन्ति। शिक्षितास्वपि तासु ताभिः सह संस्कृतेन न व्यवहरन्ति।** ' यदि स्त्रियों की समुचित शिक्षा होगी तो निःसन्देह हमारे देश व समाज में प्रत्येक घर-घर में मैत्रेयी,भारती, गार्गी, लोपमुद्रा , घोषा, अपाला, जैसी विदुषी महिलायें होंगी। इस भारतवर्ष में विज्जका, मोरिका, विद्या, शिला भट्टारिका आदि जैसी विदुषी कवियित्री हुई हैं जो अपनी यशःकीर्ति से सुशोभित हो रही हैं।'**यदि कन्यकाः शिक्षिताः न भविष्यन्ति तर्हि भार्या मूलं त्रिवर्गस्येति धर्मानुशासनं कथं सेत्स्यति '।** सुरभारती स्वयमेव निवेदन करती है -

यदि निजकुलगौरवेऽनुरागो

यदि च ममाऽभ्युदयोदये स्पृहाः वः ।

कलयत ननु संस्कृते प्रवीणा

निजवनिता निजकन्यकाश्च सर्वाः ॥[८]

सुरभारती शिक्षकों एवं छात्रों के बीच परस्पर सौहार्दपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा करती हैं। आज शिक्षक और छात्रों में परस्पर सामञ्जस्य नहीं दिखता सम्भवतः इसका एक प्रमुख कारण है शिक्षकों द्वारा छात्रों को विषयगत शिक्षण न देकर उसे इतर कार्यों में लगाना अथवा छात्र का अमूल्य समय नष्ट करना है। जैसा कि सुरभारती स्वयं कहती हैं –

नेयमाध्यात्मिकी शिक्षा आर्थिकी धार्मिकी न वा।
न वाऽनन्दकरी पुंसां केवलं कालयापिनी ॥[९]

आज हमारे शिक्षण संस्थानों में संस्कृत शिक्षा पद्धति में धार्मिक शिक्षा हेतु धर्मशास्त्र तथा भारतीय संस्कृति की शिक्षा का नितान्त अभाव दिखलाई पड़ता है जो अत्यन्त दुःखद है-' **इंद च मे महद दुःख यत् साम्प्रतिशिक्षणे धर्म - संस्कृति शिक्षण व्यवस्था नैव दृश्यते** '। पुरुषार्थचतुष्टय 'के सम्बन्ध में धर्म विषयक अथवा अर्थादि विषयक ग्रन्थों का विपुल सन्निवेश हमारे संस्कृत साहित्य में निहित है किन्तु उसके अध्ययन-

अध्यापन करने वाले विरले हैं। इस प्रकार संस्कृत शिक्षण पद्धति में धर्मादि शास्त्रों के हो रहे पतन को रोकने का समुचित उपाय अपनाकर हम ऐसे दोषों को दूर कर सकते हैं। सुरभारती के मुख से –

विद्यालयः सुरगिरो, गुरुशिष्यवर्गः

प्रायो द्विजोऽथवसतिर्मठमन्दिरेषु ।

तत्रापि धर्मविषयस्य न शिक्षणं चेद्

हंहो कुतो नु भविता वत धर्मबोधः ॥[१०]

आज वर्तमान संस्कृत शिक्षा पद्धति में हमारे सुधी पण्डितों में बौद्ध- जैन के महत्वपूर्ण ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन की ओर श्रद्धा और रुचि के सर्वथा अभाव होना चिन्ता का कारण है। संस्कृतज्ञों द्वारा बौद्ध एवं जैन वाङ्मय में विद्यमान विशाल साहित्यों की अनदेखा करते हुए उसके प्रति हेय भाव दिखाना सर्वथा अनुचित है क्योंकि जैन-बौद्ध वाङ्मय के विशाल साहित्यों का भण्डार हमारी भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के लिए पोषक व उपजीव्य भी है। सुरभारती से –

धर्म-संस्कृत-विचारभेदजं

वैमनस्यपनीय मानसात् ।

बौद्ध-जैन रचनाऽनुशीले

तत्परा भवत तत्वलिप्सवः ॥[११]

वर्तमान समय में हमारे अध्येता वर्ग में संगीत, अभिनय आदि ललित कलाओं के प्रति महती श्रद्धा का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। संस्कृत छात्रों में विशेष रूप से संगीतादि के प्रति लगाव शनैः शैनैः क्षीण होता जा रहा है। वे सर्वथा इस बात से अनभिज्ञ है कि हमारे जीवन में जिस प्रकार धर्म, विज्ञान, साहित्यादि उपयोगी व हितकारक है ठीक उसी प्रकार संगीतादि कला भी।' सत्यं शिवं सुन्दरम् ' यह उक्ति जीवन को सार्थक बनाती है तो वह कला की ही उपासना से सम्भव है –

यद्यत् सत्यतमं लोके यद्यत शिवतम तथा।

तत् सौन्दर्यसुसम्मृष्टं कलाभिरूपलभ्यते ॥[१२]

इस प्रकार हम संस्कृत में गीत संगीतादि,नाटकों,प्रहसनों आदि का अभिनय करके सामाजिक को संस्कृत के प्रति रूचि जागृत कर सकते हैं। जयदेवकृत **'गीतगोविन्दम्** ' भट्टमथुरानाथ शास्त्रीकृत ' **जानकीवल्लभम्** ' जैसे ग्रन्थ ग्रामीण सहृदयों को भी बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। प्रायः संगीत,अभिनयादि ललित कलाओं से विरक्त मनुष्य का जीवन शुष्कपत्र के सदृश नीरस हो जाता है और वह समाज में सदैव उपेक्षित सा अनुभव करता है। यथा-

साहित्यसङ्गीतकला -रहितो यो हि मानवः ।

स च साक्षात् पशुर्ज्ञेयः श्रृङ्ग - पुच्छ – विवर्जितः ॥[१३]

गीत-संगीतादि के माध्यम से हम अल्पज्ञ शिशुओं के साथ-साथ प्रौढ़ लोगों में भी संस्कृत के प्रति रूचि जागृत कर सकते हैं। संगीत को हम भोजपुरी भाषा-भाषी क्षेत्रों में भोजपुरी लय में गीतों की रचना करके उनका मनोरंजन कर सकते हैं। पं० द्विवेदी जी द्वारा रचित लोकप्रिय कव्वाली –

वा न वा

यस्य रागादिना नो मनो दूषितं

तेन काशी अयोध्या गता वा न वा।

येन माता पिता सेवया पूजितो

मन्दिरे तेन पूजा कृता वा न वा।[१४]

ऐसी शताधिक कविताओं, गीतों, द्वारा हम शिशु बालकों को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं।ऐसी रचनाएं भावी संस्कृत शिक्षण के लिए सुलभ पाथेय बन जाता है।

सुरभारती के महती वेदना का एक प्रमुख कारण समाज में फैली कुरीतियों,बाह्य आडम्बर एवं सामाजिक अव्यवस्था। आज समाज में सर्वत्र बालविवाह, छुआ-छूत , विधवा स्त्रियों की उपेक्षा,कन्या - विक्रय, मादक द्रव्यों का प्रचुर मात्रा में सेवन एवं धार्मिक स्थलों पर जन समुदाय को ठगना आदि अत्यन्त चिन्तनीय विषय है। सन्देशवाहक कवि के अनुसार संस्कृत शिक्षण पद्धति में धर्म संस्कृति शिक्षा का प्रयोग नितान्त आवश्यक है। जैसे –

इदं मे महद्दुःखं यत् साम्प्रतिशिक्षणे ।

धर्मसंस्कृतिशिक्षया व्यवस्था नैव दृश्यते।।[१५]

संस्कृतं संस्कृतेर्मूलं जीवनञ्चापि संस्कृतेः।

विनष्टे संस्कृते नूनं नष्टा स्यादार्यसंस्कृति ॥[१६]

इसी प्रकार चारों आगमों में व्याप्त अव्यवस्था, बालविवाह, आदि सामाजिक कुरीतियों की ओर देखकर सन्देहवाहक कर हृदय अत्यन्त दुःखित होता है। ' पण्डिताः धर्मप्रचारं समाजे व्याप्तानां कुरीतीनां रुढीनां निवारणं च न कुर्वते येत समाजे सर्वत्र सर्वस्मिन् क्षेत्रे धर्महासोऽवलोक्यते। आश्रमधर्माणामव्यवस्था,बालवृद्धयोःविवाहः, यौतुकग्रहणम्, तद्धेतोः बधूदाहः, पाखण्डिनांसम्मानः, असाधुषुसाधुबुद्धिः, अश्लीलचित्राणां प्रदर्शनम्, धूमपानं, सुरापानं, इत्येते अन्ये चापि अगणनीयाः सामाजिकाः दोषाः इति बहुतर चिन्तनीयमस्ति। '

सुरभारती के मुख से -

आश्रमाणामव्यवस्था विवाहो बालवृद्धयोः

कन्यांना विक्रयश्चापि मादक द्रव्यसेवनम् ।

भिक्षादानमदीनेषु साधुज्ञानमसाधुषु

पाखण्डिनां वञ्चकानां सम्मानश्चापि सर्वशः ॥[१७]

हिन्दू समाज में सर्वत्र फैली व्यापकता स्पृश्यता को देखकर कवि का हृदय द्रवित हो गया और इससे छुटकारा पाने के लिए उन्होंने सुधीजनों से निवेदन किया है कि अपने विचारों में परिवर्तन लायें और दीन-दुखियों के प्रति अपार करुणाभाव रखें –

उत्थापयन्ति पतितान् निमग्नान् तारयन्ति च।
बोधयन्ति शयितान् ते नराः भुवि दुर्लभाः ॥[१८]

कवि ने अपने सन्देश के माध्यम से सामाजिक कुरीति -रिवाजों, रुढ़ियों, पाखण्डवाद , वेश्यावृत्ति, अश्लील विज्ञापनों, मद्यपान आदि पर विशेष कुठाराघात किया है वहीं दूसरी ओर संस्कृत पण्डितों का श्रुतियों,

स्मृतियों, रामायण, महाभारत, व पुराणों के पठन-पाठन की ओर अरुचि की ओर बल दिया है। सम्प्रति छात्रों में इस अरुचि का कारण संस्कृत शिक्षा पद्धति है, जिसमें धर्म, सदाचार, शिष्टता, सभ्यता, नैतिकता एवं मानवता आदि विषयों के सम्बंध में कोई विशेष और नियमित व्यवस्था नहीं है। न तो पाठ्य-पुस्तकों में ही ऐसी पुस्तकों का समावेश है और न हि शिक्षण संस्थाओं की ओर से ऐसा कोई विशेष प्रबंध किया जाता है। आज समाज में सर्वत्र मादक द्रव्यों के सेवन की लत देखकर सुरभारती अत्यन्त दुःख व्यक्त करते हुए अपना उद्‌गार अभिव्यक्त करती है- **'ध्रुम्रपानं मुखे मुखे द्विजेस्वपि सुरापानं गाजापानं च साधुषु '** । ' तमालपत्रभक्षणं दृष्ट्वा न केवलं दुःखं भवति,घृणापि भवति, क्रोधः अपि जायते।' इतना हि नहीं आज हम यहाँ-वहाँ सर्वत्र यही देखते है – **'यत्र हस्ते दृष्टे तत्र तमालपत्रं विराजते '**। तमालपत्रसेवन विषये लिखितम् –

न स्वादु नौषधमिदं न च वा सुगन्धि

नाऽक्षिप्रियं किमपि शुष्कतमाकुचूर्णम् ।

किं चाक्षिरोगजनकं च तदस्य भोगे

बीजं नृणां न हि न हि व्यवसनं विनाऽन्यत् ॥[१९]

धर्मोपदेशकों में सर्वथा सात्विक प्रवृत्तियों का अभाव सर्वत्र देखकर कवि का मन अत्यन्त दुःखित होता है- 'बहवो धर्मोपदेशकाः स्वयं सदाचारहीनाः सन्तः लोकजनान् आचार शिक्षयन्ति। शुद्धया वृत्या ते धर्मोपदेशं न कुर्वते। धर्मस्य प्रचारस्तेषां लक्ष्यं नास्ति अपितु धनार्जनं ततश्च कामावाप्तिः'।

सम्प्रति धनार्जन करना हमारे धर्मोपदेशकों का मूल ध्येय है न कि धर्म प्रचार। धर्मोपदेशकों में न तो धर्म-आचरण के प्रति निष्ठा है और न हि श्रद्धाभाव। बहुशः धर्मोपदेशक स्वयं ही सदाचार हीन है और लोगों को सदाचार, उत्तम आचरण, सत्य -अहिंसा,वैराग्य,त्याग जैसी ऊँची-ऊँची उपदेश देते हैं। इनमें वाह्यप्रदर्शन,वाह्य- आडम्बर , स्वार्थसिद्धि,धनार्जिन की प्रवृत्ति,लुब्धकों जैसा जीवनशैली हमारे समाज के लिए भयावह है। इन उपदेशकों की दशा देखकर सुरभारती कहती है –

प्रायो धार्मिकलोकेषु धर्माचार्यवरेष्वपि ।

वाह्यप्रदर्शनस्यैव प्रवृत्तिरवलोक्यते ॥[२०]

वाह्याऽडम्बरबाहुल्यं स्पर्शास्पर्शोग्रभावना।

स्वार्थसिद्धिमयी दृष्टिस्त्रयमाचार्यलक्षणम् ॥[२१]

दूसरी ओर कवि ने समाज के बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों के निवासस्थान घरों, वस्त्रादि में स्वच्छता के अभाव को विषय बनाकर सन्देश दिया है। समाज के उच्चवर्गों में भी धुम्रपान आदि के कारण दीवारों पर सर्वत्र मलिनता दिखती है। महर्षि वात्सायन ने अपने 'कामसूत्र' में घरों एवं परिधानों के स्वच्छता के महात्म्य के विषय में प्रचुर मात्रा में उल्लेख किया है। यथा- **वेश्म च शुचि, सुसंमृष्टस्थानम्, विरचितविविधकुसुमम् ,श्लक्ष्ण भूमितलं, हृदयदर्शनम्, त्रिषवणाचरिवलिकर्म,पूजितदेवायतनं कुर्यात्।**[२२]

सुरभारती के मुख से –

कामसूत्रे तु शोभाया स्वच्छतायाश्च वेश्मनः ।

वात्स्यायनेन मुनिना महात्म्यं बहु कीर्तितम् ॥[२३]

सुरभारती सन्देशवाहक कवि ने स्वच्छता के व्यापकता को बतलाते हुए निम्न निवेदन किया है: १- स्वच्छे स्थाने वस्तव्यम् २- गृहं स्वयं मार्जनीयम् ३- भित्तयोः निर्मला भवेयुः ४- जालकांदुरीकरणीयम् ५- अवकरः सुदुरे क्षेप्यः ६- निष्ठीवनं निश्चिते स्थाने करणीयम् ७-गृहं परितः तुलसीपुष्पादिकम् रोप्यम् ८-आदर्शपुरुषाणां चित्रैः भित्तयः सज्जीकरणीयाः।

वर्तमान समय में सामान्य लोगों से इतर बुद्धीजीवी वर्ग में भी प्रायः आध्यात्मिक उत्कर्ष तथा मनोबल का स्वभाविक अभाव देखकर सुरभारती विविध सन्देश देती हैं। मन की पवित्रता व शुद्धता सर्वजन हित की भावना, सौहार्दपूर्णभाव,आचार-विचार में समसरता, दम्भपाखण्ड का परित्याग, कामक्रोधादि पर संयम, इत्यादि सभी गुणों से मनुषय का आध्यात्मिक उत्कर्ष होता है। सन्देशवाहक कवि आधुनिक युग में संस्कृत भाषा एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के प्रति पण्डितों में निष्ठा जागृत करने का प्रयास करते हुए विविध उपायों को अपने सन्देश में बतलाया है और संस्कृत जगत में व्याप्त दोषों को दूर करने के जो -जो उपाय निर्दिष्ट है अथवा जो- जो साधुजनों द्वारा उपदिष्ट है उन सभी का द्विवेदी जी ने दो हजार श्लोकों में सन्देश द्वारा बतलाया है। वर्तमान समय में हम सभी भारतियों को संस्कृत भाषा के संवर्धन एवं समुन्नयन के लिए कुछ प्रमुख कर्तव्यों का पालना करना नितान्त आवश्यक एवं अपेक्षित है-

* सर्वे शिक्षिता अशिक्षिता वा हिन्दवः संस्कृतं निजकर्तव्यं मत्वा अवश्यं पठेयुः येन संस्कृतेन सह संस्कृतेश्चापि रक्षणं स्यात्। संस्कृतज्ञानां विदुषां तेन सम्मानः अपि भविष्यित।

* देशधर्माभिमानिभिः वृद्धैरपि जनैः संस्कृतभाषा अवश्यं पठनीया।

* ये भाषाक्षेत्रे अतिविश्रुताः विद्वांसः सन्ति तेषां सन्निधौ गत्वा ते संस्कृतस्य समुन्नतये किञ्चित् कर्तुं प्रार्थनीयाः संस्कृतपण्डितैः।

* ये भारतीयानां भाषाणां सेवकाः सन्ति ते अपि संस्कृतभाषां स्वभाषासहायिकां मत्वा तस्या अपि समुन्नतये किञ्चित् कुर्वन्तु।

* यः कोऽपि संस्कृतं कठिनं इति वदेत् तस्य मुखं पण्डितैः स्वव्यवाहरेण स्वपरिवारव्यवहारेण च सरलसंस्कृत भाषण माध्यमेन निरोद्धव्यम्।

* संस्कृतविद्भिः पूर्णप्रयत्नपूर्वकं संस्कृत उन्नतये निजदोषाःशासनदोषाः समाजगतदोषाश्च दूरीकरणीयाः।

* यतो हि संस्कृतेनैव भारतीयसंस्कृतेः धर्मस्य राष्ट्रियैक्यस्य च रक्षा कर्तुं शक्यते। वेदं विना, श्रीमद्भगवद्गीतां विना, रामायणीं कथां विना, कालिदासं विना, भारतस्य भारतत्वं कथं सिद्धयेत्।

*

निस्कर्षतः हम कह सकते है कि संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसमें भारतीय संस्कृति का चिर संचित ज्ञान भरा है। महात्मा गाँधी ने संस्कृत के महत्व एवं भावी जीवन में इसकी नितान्त प्रासंगिकता को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं - " किसी हिन्दू बालक या बालिका को संस्कृत के प्राथमिक ज्ञान से हीन नहीं रखना चाहिए , यदि उसे अपने धर्म की आत्मा का सहज बोध पाना है। बिना संस्कृत पढ़े कोई अपने को पूर्ण भारतीय एवं विद्वान् नहीं बन सकता।"[१९] आज हम लोग 'धर्म' शब्द का प्रयोग करने में किञ्चित् हिचकिचाहट करते हैं और उसके स्थान पर संस्कृति शब्द का प्रयोग करते है। परन्तु गाँधी जी ने संस्कृति की अपेक्षा धर्म शब्द को अधिक प्रयोग किया है और उसके ज्ञान एवं आचरण को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। जहाँ तक हिन्दू धर्म का सम्बंध है उसमें लघु से लेकर वृहत् सभी मौलिक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में निबद्ध है इसलिए प्रत्येक हिन्दू बालक-बालिकाओं के लिए संस्कृत का ज्ञान अपरिहार्य है। महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी ने अपनी सन्तानों को सजग करते हुएकहा है-" हमारी पैतृक सम्पत्तियों में से सबसे

बहुमुल्य रत्न हमारी संस्कृत भाषा है "। किन्तु व्यतीत होते हुए दिनों के साथ रत्न पहचानने की हमारी दृष्टि धूमिल होती गई। जिसका मूल कारण है - संस्कृत विद्यालयों में पठन-पाठन तथा दैनिक व्यवहार में शिक्षक- छात्रों द्वारा संस्कृत का न्यून प्रयोग एवं उसके प्रति घोर उपेक्षा, सामान्य व्यवहार में संस्कृत वक्ताओं द्वारा क्लिष्ट संस्कृत का प्रयोग, संस्कृतज्ञों के पुत्रों, पुत्रियों, एवं पत्नियों में संस्कृत शिक्षा का अभाव, शास्त्रों में प्रौढ़ पाण्डित्य का दिनानुदिन ह्रास,धर्मोपदेशकों में सात्विकता का नितान्त अभाव,संस्कृतज्ञों के जीवन में प्रायः आध्यात्मिक उत्कर्ष एवं मनोबल का अभाव आदि। अतएव सुरभारती सन्देशवाहक कवि सर्वत्र संस्कृतमय वातावरण चाहते हैं। वे घर -घर में संस्कृत की गूँज की अपेक्षा करते हैं –

यस्मिन् गृहे न खलु गर्जति देववाणी

यस्मिन् गृहे न खलु गुञ्जति देववाणी।

यस्मिन् न नृत्यति न गायति देववाणी

तद् किदृशं नु भवनं खलु पण्डितस्य॥[२४]

संस्कृत देववाणी है, अतः इसके अध्ययन तथा स्वाध्याय से मानव में दैवीय गुणों का विकास होने लगता है। हम निःसन्देह कह सकते है कि हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में जितना सन्तोष मिलता है उतना आधुनिक साहित्य में नहीं। इसीलिए सन्देशवाहक सुरभारती ने संस्कृत शिक्षण के साथ-साथ धर्म शिक्षण की ओर संस्कृत समाज का ध्यान आकर्षित करने पर विशेष बल दिया है। भारतवर्ष के सर्वाङ्गीण विकास के लिए भारतवासियों में अच्छे संस्कारों का होना निःसन्दिग्ध नितान्त अपेक्षित है अन्यथा कोई भी अच्छी से अच्छी राजनितिक , आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था,कोई भी संविधान एवं कोई भी प्रबन्धन इच्छित फल प्रदान करने में प्रायः असफल ही रहेगा। अतः सन्देशवाहक कवि संस्कृत भाषा एवं तत्साहित्य के समुन्नयन एवं संवर्धन के लिए एक ही नारा देता है-

नगर-नगरे ग्रामे-ग्रामे विलसतु संस्कृतवाणी

सदने सदने जन-जन वदने जयतु चिरं कल्याणी।

सत्यशीलसौन्दर्यसमीरा ज्ञानजला गतिसारा

कल कल छल छल प्रवहतु दिशि दिशि पावनसंस्कृतधारा ॥[२५]

इस प्रकार सुरभारती- सन्देश ग्रन्थ के आद्योपान्त अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि कवि (सन्देशवाहक) के मन में संस्कृत एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार के प्रति किसी निष्ठा तथा अवरोधक बिन्दुओं को दूर करने की प्रबल चेतना सचेष्ट है।

जयतु भारतम् । जयतु संस्कृतम् ॥

सन्दर्भ ग्रन्थसूची –

१- 'संस्कृतसेवा साधना' , प्रो०धर्मदत्त चतुर्वेदीपृष्ठ -१९८

२- 'सुरभारतीसन्देश '१.१.४३, वासुदेव द्विवेदी शास्त्री, प्रकाशक – सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थान, वाराणसी।

३- ' सुरभारती - सन्देशः' १.३.११,

४- 'सुरभारती - सन्देशः',१.३.१४

५- ' बालकवितावलि 'भाग-२ पृष्ठ-१४, द्वारा वासुदेव द्विवेदी शास्त्री।

६- 'सुरभारती - सन्देशः',१.३.२०

७- ' सुरभारती - सन्देशः',२.१.७०

८- ' सुरभारती सन्देशः',३.१.५३

९- ' सुरभारती सन्देशः',३.१.५४

१०- सुरभारती- सन्देशः',३.७.२६

११' सुरभारती - सन्देशः',३.८.३

१२' सुरभारती- सन्देशः',३.८.७५

१३' संस्कृतगानमाला ' पृष्ठ-६ द्वारा वासुदेव द्विवेदी शास्त्री, सार्वभौम संस्कृत संस्थान वाराणसी।

१४' सुरभारती- सन्देशः',३.५.१

१५' सुरभारती - सन्देशः',३.५.४

१६'सुरभारती - सन्देशः ',४.१.५-६

१७' सुरभारती - सन्देशः',५.८.१०

१८' संस्कृतसेवा साधना' द्वारा प्रो० धर्मदत्त चतुर्वेदी, पृष्ठ -६७

१९' सुरभारती - सन्देशः',४.२.७

२०' सुरभारती - सन्देशः',४.२.८

२१ 'वात्स्यायन कामसूत्रम्' ,चतुर्थेऽधिकरणे प्रथमोऽध्यायः।

२२ ' सुरभारती - सन्देशः',५.९.६

२३ ' संस्कृतप्रचार पुस्तकमाला -२' द्वारा पं० वासुदेव द्विवेदी शास्त्री, सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थान, वाराणसी।

२४ ' संस्कृत - गौरवगानम्' पृष्ठ-४, द्वारा पं० वासुदेव द्विवेदी शास्त्री, सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थान, वाराणसी।